स्वयं सत्य खोजें

संपादक
एन. के. जैन

सह संपादक
नगेन्द्र प्रसाद जैन

प्रकाशक-मुद्रक
स्वामी धर्मानंद

अक्षर विन्यास
नवरत्न जैन

मुद्रणालय
सरोहा इंटरप्राइज़ेज़
29/E/1, महरौली
नई दिल्ली-110 030

प्रकाशन स्थान
अध्यात्म साधना केन्द्र,
छत्तरपुर, नई दिल्ली-७४

सदस्यता शुल्क

एक प्रति - 6 रु.
वार्षिक - 70 रु.
द्विवार्षिक - 120 रु.
संरक्षक - 1,500 रु.

कृपया अपना मनीऑर्डर या बैंक ड्राफ्ट 'अध्यात्म साधना केन्द्र' के नाम से भेजें।

ADHYATMA YOG
अध्यात्म योग

अध्यात्म, योग साधना एवं स्वस्थ जीवनशैली का मासिक पत्र

वर्ष-10 अंक-9 सितम्बर 2011

इस अंक में पढ़ें

विषय सूची **पृष्ठ संख्या**

♦ संपादकीय 2

अध्यात्म

♦ धर्म और उपासना का सार है जीवन की विशुद्धि 3

♦ धर्म-निरपेक्षता : एक भ्रांति - आचार्य श्री महाप्रज्ञ 7

♦ प्रशस्त जीवन शैली के आयाम - आचार्य श्री महाश्रमण 11

नैतिक चेतना

♦ दर्पण में मुख नहीं, विषयों में सुख नहीं -स्वामी गीतानंद भिक्षु 14

स्वास्थ्य

♦ **Preksha Meditation** - *Swami Dharamanand* 18

♦ अलसी एक औषधी भी है - डॉ. गोस्वामी 20

♦ शंका एवं समाधान - गुरुदेव आचार्य तुलसी 22

स्थायी स्तंभ

♦ अध्यात्म साधना केन्द्र द्वारा आयोजित कार्यक्रम 23

♦ अध्यात्म साधना केन्द्र में होने वाले कार्यक्रमों का विवरण 24

विज्ञापन दरें

	एक अंक	वर्ष भर
आवरण पृष्ठ 2	रु. 2,000	रु. 20,000
आवरण पृष्ठ 3	रु. 3,000	रु. 30,000
आवरण पृष्ठ 4	रु. 5,000	रु. 50,000
विज्ञापन पट्टी {1½" x 4½"}	रु. 300	रु. 3,000

Tel : (011) 26802708, 26802671,32062912 Mob. : 9811783711
e-mail: sadhanakendra@gmail.com; www.prekshaheart.com

सम्पादकीय

मैत्री भाव हमारा सबसे प्रतिदिन बढ़ता जाये

सबके साथ मैत्री करो इस महत्त्वपूर्ण कथन को जीवन में उतारने के लिए मैत्री की प्रक्रिया और मैत्री का दर्शन जब तक स्पष्ट नहीं होगा तब तक इसमें सफलता नहीं मिलेगी। मैत्री का सम्बन्ध है जन्म और मरण के साथ। जब तक जन्म-मरण का चक्र सामने नहीं होगा, मैत्री का स्त्रोत नहीं फूटेगा, मैत्री फलित नहीं होगी। मैत्री का स्त्रोत जन्म-मरण के चक्र में छिपा है।

वैदिक संस्कृति से वसुधैव कुटुम्बकम् का घोष प्राप्त होता है। प्रत्यक्ष दर्शन में वसुधा एक कुटम्ब है, परिवार है। परन्तु गहराई में जायें तो इसका अर्थ होगा, इस जगत् में जो प्राणी हैं, वह कभी न कभी तुम्हारे कुटुम्ब या परिवार का सदस्य रहा है। उपाध्याय जिनविजयजी ने कहा है 'सभी प्राणी अनेक बार तुम्हारे माता-पिता, भ्राता, चाचा-चाची, पुत्र, पत्नी, भाई, बहिन और पुत्रवधु बन चुके हैं, यह जगत् तुम्हारा ही कुटम्ब है। यह मैत्री का विराट दर्शन है।

जैन दर्शन के अनुसार ऐसा कोई स्थान नहीं, ऐसी कोई जाति नहीं, ऐसा कोई कुल नहीं, ऐसी कोई योनि नहीं जहां यह जीव अनेक बार या अनन्त बार न पैदा हुआ हो। यह सम्बन्ध कितना चिरकालीन, जीव का परिभ्रमण और सम्बन्धों का ताना-बाना जिस पर मैत्री का दर्शन टिका है, यहां शत्रुता के लिए कोई अवकाश और स्थान नहीं है।

मैत्री का महत्त्वपूर्ण तत्व है क्षमा और क्षमा की निष्पति है प्रह्मदभाव। जब क्षमा और प्रमोदभावना का विकास होगा तब सबके साथ मैत्री होगी। मैत्री कुछ व्यक्तियों को छोड़कर अन्य सबके साथ नहीं हो सकती, मित्रता हो सकती है। अतः इस मैत्री पर्व-पर्युषण पर परिवारजनो, परिचितों व आम लोगों से क्षमा मांगते हैं, उनको क्षमा करते हैं। इस महान पर्व पर हम साधना केन्द्र के सदस्य पाठकों से हृदय से 'खमत-खामणा' करते हैं। प्रमोदभावना के साथ आपके आध्यात्मिक विकास की मंगल कामना करते हैं।

- स्वामी धर्मानंद

अध्यात्म

धर्म और उपासना का सार है जीवन की विशुद्धि

-आचार्य तुलसी

आज समूची मनुष्य जाति संख्या में बंटी हुई है। इतने करोड़ ईसाई हैं, इतने करोड़ बौद्ध हैं, इतने करोड़ जैन हैं, इतने करोड़ हिन्दू हैं और इतने करोड़ मुसलमान हैं आदि-आदि। भौगोलिक सीमा, जाति आदि ने मनुष्य जाति को बांटा तो उनका आधार भौतिक था इसलिए उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता पर धर्म-सम्प्रदाय ही मनुष्य जाति को विभक्त कर डाले, वह अक्षम्य है क्योंकि उसका आधार ही एकता है।

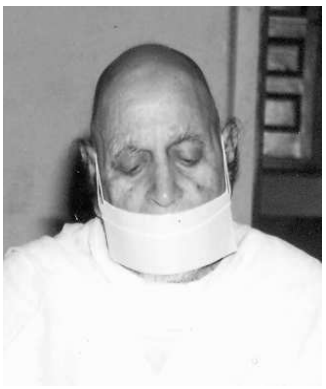

सम्प्रदाय अनुपयोगी नहीं हैं, लेकिन उनमें अनुपयोगी तत्व आ गये हैं। इन हेय तत्वों का परिमार्जन आज की स्थिति की अनिवार्य मांग है।

आज बुनियादी युग है, चिन्तन की कोई कमी नहीं है। पर चिन्तन होता है- पदार्थ को समझने के लिए, जबकि होना चाहिए अपने आपको समझने के लिए। जो केवल दूसरों के बारे में सोचता है, वह दूसरों की उपासना करता है अपनी नहीं। आज उपासना का अर्थ सिमट गया है।

किसी व्यक्ति या इष्ट की अर्चना का महत्व तभी हो सकता है जब हम उसकी आज्ञा का पालन करें। उसकी कोरी अर्चना का क्या मूल्य है? अर्चना की अपेक्षा आज्ञा का पालन अधिक महत्वपूर्ण है। उसकी आराधना कल्याण के लिए होती है। आवश्यक यही है कि हेय का त्याग किया जाये और उपादेय को अंगीकार किया जाये।

जब तक आत्मनिरीक्षण नहीं होता तब तक हेय और उपादेय का ज्ञान संभव नहीं है। मनुष्य जितना करता है, वह सब उपादेय नहीं है और जो नहीं करता वह सब हेय नहीं है। इसका विवेक आत्मनिरीक्षण से ही मिल सकता है। जो आत्म-निरीक्षण नहीं करता वह दूसरों की भूल देखने में बहुत सूक्ष्म दृष्टि रखता है। अपनी भूलों की अनुभूति उसी को होती है जिसमें अपने आपको देखने की क्षमता हो। जिसे अपनी भूलों की अनुभूति न हो, वह उनकी आलोचना क्या करेगा? जो अपनी आलोचना करता है वह दूसरों की आलोचना करने में कम रस लेता है। अपने किये असद्व्यवहार को समझ लेता है, वह उसके लिए क्षमा मांग सकता है। क्षमा मांगना सचमुच ही अमृत की धारा बहाना है। इससे विष ही नहीं घुलता, मैत्री का महान् प्रवाह भी चल पड़ता है।

उपासना का आश्रय है आत्मा का सान्निध्य प्राप्त करना। आत्मा सबमें है, फिर भी आत्मवान् बहुत थोड़े होते हैं। जिसमें संयम नहीं होता, वह आत्मवान् नहीं होता। मनुष्य के जीवन का प्रधान अंग आत्मा है, फिर भी उसके समीप रहने का अवसर बहुत ही कम मिलता है। अधिकांशतः वह बाहरी प्रदेशों में रहता है। ये इन्द्रियां सदा खुली रहने वाली खिड़कियां हैं। इनमें से मन बाहर की ओर झांकता रहता है। आत्मा में क्या है? कितना है? कैसा है? इसका उसे पता नहीं है। हो भी कैसे? जो इसके समीप नहीं आता, वह उसे कैसे पहचाने। अपनी पहचान सम्भवतः सबसे कठिन है। अपनी पहचान का साधन है संयम। संयम की उपासना ही व्रत है। जिसमें संयम नहीं है उसकी अर्चना छलना हो जाती है। छलना इसलिए कि वह पूजा करता है भगवान की ओर कार्य करता है भगवान से दूर रहने का। वह पूजा के समय तो भगवान में लीन हो जाता है और उठते ही ऐसे कार्य करता है जिसका आचरण कर कोई आदमी भगवान नहीं बन सकता। भगवान के आदेशों का

उल्लघंन करे और भगवान की गुण गाथा गाकर उन्हें प्रसन्न करना चाहे, यह कैसी समझ है? एक पुत्र पिता की गुण-गाथा गाकर उन्हें प्रसन्न करना चाहे, यह कैसी समझ है? एक पुत्र पिता की गुण-गाथा गाये न गाये यह कोई महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं है महत्वपूर्ण यह है कि वह पिता की बात मानता है या नहीं। पिता का कहना नहीं मानता है तो गुण-गाथा गाने से क्या होगा? और उसका कहना मानता है तो गुण गाथा न गाकर भी वह सफल है। सफलता की कसौटी केवल भक्ति ही नहीं है। जब तक जीवन में संयम विकसित नहीं होता तब तक कोई व्यक्ति भक्त बनता ही नहीं। सच्चे अर्थों में व्यक्ति धार्मिक तभी बन सकता है जब उसमें सहिष्णुता, संयम, त्याग आदि की भावना हो। व्यक्ति अर्थलोलुप न हो। कपटपूर्ण व्यवहार न करता हो। सत्य भाषी हो और सत्प्रवृत्ति परायण हो। यह तभी संभव है, जब व्यक्ति आत्मनिरीक्षण करे, चिंतन करे। तभी धर्म की प्रतिष्ठा हो सकती है।

धर्म सार्वभौम और शाश्वत तत्व है। इसमें नवीनता और प्राचीनता का भेद साम्प्रदायिकता के कारण उभरा है। साम्प्रदायिक भेद वैचारिक मतभेदों से निष्पन्न है। सम्प्रदाय को ही धर्म मानना धर्म के मूल स्वरूप को नहीं समझने का परिणाम है। मेरे अभिमत से सम्प्रदाय फल की सुरक्षा के लिए छिलके के समान है। सम्प्रदाय व्यक्ति को धर्मोपासना की सुविधा देता है, व्यक्ति की आस्था को आलम्बन देता है और सामूहिक उपासना का वातावरण देता है। किन्तु कोई भी सम्प्रदाय धर्म नहीं है। धर्म और सम्प्रदाय की यह भेदरेखा हमारे सामने स्पष्ट होनी चाहिए।

धर्म प्रदर्शन के लिए नहीं, जीवन-व्यवहार में परिव्याप्त होने के लिए है। धर्माचरण करने वाला व्यक्ति का व्यवहार तदनुरूप नहीं होता है तो धर्म उसको त्राण नहीं दे सकता। धर्म क्रिया है। हर क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। धर्म की प्रतिक्रिया है व्यवहार। व्यवहार में यदि धर्म का पुट है तो

धर्म का उपयोग है अन्यथा एक धार्मिक और अधार्मिक के बीच विभाजन रेखा क्या होगी?

धर्म और उपासना का सार जीवन की विशुद्धि है। क्षमा, निर्लोभता, ऋजुता, और मृदुता ये चार धर्म के द्वार हैं। जब तक मनुष्य इन द्वारों के निकट नहीं पहुंचेगा, धार्मिक जीवन में प्रवेश कैसे कर सकेगा? धर्म से शांति उपलब्ध होती है, यह बात कहने की नहीं, अनुभव करने की है। अनुभव के बाद जो बात कही जाती है, वही वास्तविकता है।

****

अध्यात्म योग

मासिक पत्रिका

सदस्यता नियम

अध्यात्म योग एवं स्वास्थ्य सम्बंधित ज्ञानार्जन के लिए तथा साधना केन्द्र में संचालित गतिविधियों की जानकारी प्राप्त करने हेतु इसके सदस्य स्वयं बने एवं अपने परिचित व्यक्तियों को भी बतायें।

इसकी सदस्यता शुल्क निम्न श्रेणियों में उपलब्ध है-

एक वर्ष	:	७० रू. मात्र
दो वर्ष	:	१२० रू. मात्र
आजीवन	:	१५०० रू. मात्र

कृपया सदस्यता हेतु संपर्क करें -

अध्यात्म साधना केन्द्र

छत्तरपुर, नई दिल्ली - ११००७४

फोन नंबर : ०११-२६८०२७०८, २६८०२६७१, ३२०६२६१२

ई-मेल : sadhanakendra@gmail.com

www.prekshaheart.com

अध्यात्म

धर्म-निरेपक्षता : एक भ्रान्ति

-आचार्य महाप्रज्ञ

धर्म जीवन के लिए संजीवनी है। भारतीय जनता के लिए जीवन का सर्वोच्च तत्त्व कोई है तो धर्म ही है। करोड़ों लोगों की धड़कने धर्म के आधार पर ही टिकी हुई हैं। सबसे बड़ी संख्या में सबसे गहरी श्रद्धा के साथ लोग किसी को पूजते हैं तो वह धर्म ही है। मन के मन्दिर में धूपदानी की तरह सुलगती श्रद्धा ने पीढ़ी-दर-पीढ़ी धर्म की सौरभ संक्रान्त की है। जिसे पाकर जन-जन धन्यता और कृतार्थता से भर जाता है, उस धर्म से निरपेक्ष रहने की बात कोई व्यक्ति, वर्ग, समाज या राष्ट्र सोच सकता है, कल्पना भी नहीं होनी चाहिए। फिर भी हिन्दुस्तान को धर्म-निरपेक्ष देश के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रस्तुति के औचित्य पर विचार करते समय आश्चर्य अवश्य होता है कि भारत को धर्म-निरपेक्ष कैसे माना जाए?

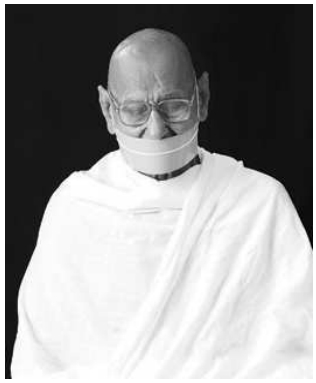

धर्म-निरपेक्ष राज्य के लिए अंग्रेजी के जिस शब्द को काम में लिया गया है, वह है- सेक्युलर स्टेट। डिक्शनरी में सेक्युलर शब्द का प्रयोग सांसारिक, निरपेक्ष, गैरमजहबी आदि अनेक अर्थों में होता है। धर्म-सम्प्रदाय के लिए वहां सेक्ट शब्द का उपयोग है। सेक्ट और सेक्युलर शब्द काफी निकट प्रतीत होते हैं। इस स्थिति में सेक्युलर शब्द का अर्थ

सम्प्रदाय निरपेक्ष ही होना चाहिए।

धर्म-निरपेक्ष शब्द भ्रामक है। जो लोग धर्म के प्रति आस्थाशील हैं, वे धर्म-निरपेक्ष जीवन-पद्धति में विश्वास नहीं कर सकते। जिन लोगों की धर्म में आस्था नहीं है, जो धर्म नाम के तत्त्व को देखना-सुनना भी नहीं चाहते, उनके लिए वह प्रसन्नता की बात है। प्रश्न उठता है कि इस भ्रामक शब्द का चुनाव क्यों किया गया ? इस प्रश्न पर विचार करने से यह प्रतीति होती है कि जिन्होंने भी इस शब्द का चयन किया, उनका चिन्तन धर्म के विरुद्ध नहीं होगा। मजहब के वाचक धर्म शब्द को लेकर ही उन्होंने सेक्युलर शब्द को स्वीकार किया होगा।

भारत एक ऐसा देश है, जहां अनेक धर्म फल-फूल रहे हैं। हर धर्म के अनुयायी अपने धर्म को महत्त्व देते हैं। ऐसी स्थिति में किसी धर्म को संविधान के साथ जोड़ने से धार्मिक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो सकती थी। उस संभावित संघर्ष की स्थिति से बचने के लिए चिन्तनपूर्वक इस शब्द का चयन किया गया। काश ! चयनकर्ताओं को कोई उपयुक्त शब्द मिलता तो वर्तमान में उपस्थित कठिनाई से बचाव हो जाता। पर आज तो सेक्युलर शब्द से धर्म-निरपेक्ष अर्थात् धर्महीन अर्थ को पकड़ा जा रहा है।

बहुत वर्षों पहले हम जयपुर में थे। उस समय उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमंत्री एवं राजस्थान के राज्यपाल डॉ. संपूर्णानन्द मिले। उन्होंने कहा- 'आचार्यजी ! हमारे संविधान में जो धर्म-निरपेक्ष शब्द है, वह गलत है। लोग इसके मूल अर्थ को समझते ही नहीं हैं। इसलिए इस शब्द को बदलना चाहिए।'

मैंने कहा - 'आपका चिंतन बिल्कुल सही है। आप इसे बदलते क्यों नहीं ?'

इस पर वे बोले -'हम लोग सरकार में हैं। हम यह काम नहीं कर सकते। आपको कुछ करना चाहिए ताकि इस

भ्रामक शब्द के स्थान पर कोई दूसरा उपयुक्त शब्द आ सके।'

इस बातचीत से यह अनुमान हुआ कि धर्म-निरपेक्ष शब्द के बारे में देश के चिन्तनशील लोगों की राय कैसी है?

कुछ लोग कहते हैं कि शब्द कोई भी हो, व्यक्ति की भावना संकीर्ण नहीं होनी चाहिए। इस विचार के साथ हमारी सहमति नहीं है। क्योंकि शब्द में बड़ी शक्ति होती है। आजकल तो ध्वनि और रंग के आधार पर नये-नये प्रयोग किए जा रहे हैं। शुद्ध ध्वनि-तरंगों को सुनने से वनस्पति बहुत जल्दी और अच्छे ढंग से विकसित होती है, जबकि अशुभ ध्वनि-तरंगों का वह प्रभाव नहीं होता। शब्द का अपना विज्ञान है। उससे मानवीय चेतना भी अप्रभावित नहीं रह सकती। इस धर्म-निरपेक्ष शब्द ने काफी लोगों के मन में धर्म के प्रति लापरवाही या उदासीनता पैदा की है।

मेरा अपना विश्वास है कि कोई भी व्यक्ति, वर्ग या देश धर्म-निरपेक्ष नहीं हो सकता। धर्म-निरपेक्ष होने का अर्थ है- अहिंसा, मैत्री, प्रेम, सत्य, प्रामाणिकता आदि से निरपेक्ष होना। क्या इनसे निरपेक्ष होकर कोई जी सकता है ? जब तक संसार में अहिंसा आदि का मूल्य है, तभी तक जीवन है। जहां-जहां इस मूल्य की अवहेलना हो रही है, वहां जीवन का खतरा बढ़ रहा है। पानी और वनस्पति के जीवों की हिंसा भी पर्यावरण के संतुलन को बिगाड़ देती है, प्रदूषण की समस्या उत्पन्न कर देती है, ऐसी स्थिति में अहिंसा आदि तत्त्वों का सार्वभौम मूल्य प्रतिष्ठित होता है और यही वास्तव में धर्म है।

धर्म का सम्बन्ध केवल आत्मा-परमात्मा से ही नहीं है, यह नीति और व्यवहार का भी आधार है। नैतिक मूल्यों में जो गिरावट आयी है, उसमें भी बड़ा कारण धर्म के प्रति अनास्था है। आज बहुत लोगों की तो यह धारणा बन गई है कि ईमानदारी से काम ही नहीं चल सकता। नैतिक मूल्यों

के ह्रास से भी अधिक चिंता का विषय यह धारणा है, जिसके रहते नैतिक अभ्युदय की बात फलित ही नहीं हो सकती।

वास्वत में धर्म और सम्प्रदाय, दो अलग-अलग तत्त्व हैं। धर्म और सम्प्रदाय को अलग-अलग प्रस्तुति देने के लिए हमने अणुव्रत का प्रवर्तन किया। हमारा धर्मसंघ एक सम्प्रदाय है और अणुव्रत सम्प्रदायातीत धर्म है।

अणुव्रती बनने के लिए जैन या तेरापंथी होने की अनिवार्यता नहीं है। हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई कोई भी अणुव्रती बन सकता है, बशर्ते कि वह धार्मिक हो। धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों में आस्था न हो तो अणुव्रत का पालन भी हो सकता।

शब्द सेक्युलर हो या नॉनसेक्टेरियन, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। वह शब्द धर्म-निरपेक्षता का बोधक न होकर सम्प्रदाय-निरपेक्षता का बोधक हो, यह आवश्यक है। धर्म और सम्प्रदाय का स्वरूप अलग-अलग समझ लेने के बाद कोई भी विचारशील व्यक्ति भारतवर्ष को धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र मानने के लिए तैयार नहीं होगा।

उत्तप्तता

१. उत्तप्ता की स्थिति मनुष्य को आपे से बाहर कर देती है और आपे से या अपने स्थान से बाहर रखी हुई चीज कभी अच्छी नहीं होती।
२. एक क्षण की उत्तप्तता भी आत्मा का बहुत बड़ा अहित कर सकती है।
३. उत्तप्तता मुक्ति के मार्ग में मूलभूत बाधक तत्त्व है।

-आचार्य तुलसी

प्रशस्त जीवन शैली के आयाम

-आचार्यश्री महाश्रमण

मनुष्य एक उच्च कोटि का प्राणी है इसलिए उसकी जीवनशैली भी विशिष्ट होनी चाहिए। विशिष्ट जीवनशैली के लिए मैं यदा-कदा चार सूत्र बताया करता हूं।

पहला सूत्र है- ईमानदारी के प्रति निष्ठा। आदमी के मन में नैतिक मूल्यों के प्रति, सच्चाई के प्रति, प्रामाणिकता के प्रति निष्ठा जाग जाए। उसमें यह आस्था जाग जाए कि कुछ कठिनाई आएगी तो उसे झेलेंगे, किन्तु ईमानदारी को बनाए रखेंगे। ईमानदारी की दो बाधाएं है। - असत्य और चोर्य। जहां असत्य और चोर्य है, वहां बेईमानी है। आदमी मृषावाद और चोरी की वृत्ती से बचने का प्रयास करे।

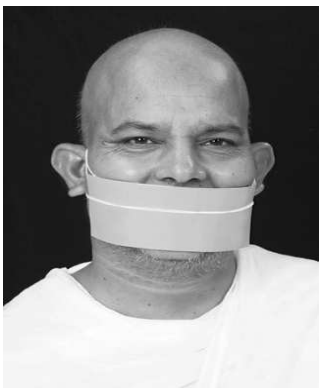

कभी-कभी आदमी धोखा देने का भी प्रयास करता है, और तो क्या, देवी-देवताओं को भी धोखा दे देता है। अगर शांतिमय जीवन जीना है तो धोखा, बेईमानी को छोड़ना होगा और ऋजुता व सरलता को स्वीकार करना होगा। सरलता और ईमानदारी, दोनों एक ही बात है। सरलता नहीं है तो फिर ईमानदारी का रहना भी संभव नहीं होगा। इसलिए ऋजुता और प्रामाणिकता, दोनों में अभिन्नता अथवा परम नैकट्य माना गया है। ईमानदारी शुद्ध, निर्मल और शांतिमय जीवन का पहला और प्रमुख सूत्र है।

दूसरा सूत्र है- संवेग संतुलन; आक्रोश संयम। आदमी को यदा-कदा, चाहे-अनचाहे गुस्सा आ जाता है, परन्तु उसमें इतनी क्षमता का विकास तो होना चाहिए कि प्रतिकूल

स्थिति में भी वह शांत रह सके। जब व्यक्ति के चेहरे पर आक्रोश की रेखाएं छा जाती है तब उसका सुंदर चेहरा भी विकृत बन जाता है। वे लोग धन्य है, जो सदा शांत रहते हैं और जिनके चेहरे पर अनुकूल-प्रतिकूल, हर परिस्थिति में मुस्कान देखने को मिलती है।

परिवार में समस्याएं उत्पन्न होती रहती हैं। उसका एक कारण है- शहनशक्ति का अभाव। जिनको साथ में जीना हो और एक दूसरे को सहन करने की क्षमता न हो तो वे शांतिमय जीवन कैसे जी पायेंगे?

मेरा तो मानना है कि गलती करने पर अंगुली-निर्देश भी करना चाहिए, किन्तु साथ में सहन करने का वादा भी होना चाहिए, तभी व्यक्ति शांतिमय जीवन जी सकता। मैंने एक सूत्र बना दिया- सहन करना चाहिए, मौके पर कहना भी चाहिए और शांति के साथ रहना चाहिए।

तीसरा सूत्र है- संयम। आदमी में संयम का विकास होना चाहिए। जहां-जहां इसमें कमी रहती है, वहां-वहां समस्या खड़ी हो जाती है। मेरा मानना है कि अपेक्षित संयम के अभाव में व्यक्ति का पूरा विकास नहीं सकता। आदमी में कठोर जीवन जीने का भी माद्दा होना चाहिए। उसके खान-पान, रहन-सहन में भी संयम होना चाहिए। संयम के अभाव में वह अखाद्य खा लेता है और अपेय पी लेता है। खान-पान के असंयम के कारण वह अनेक समस्याओं को निमंत्रण दे देता है, अनेक बीमारियां हो जाती है। शरीर के अनेक अवयव अव्यवस्थित हो जाते है। इसलिए आदमी कुछ त्याग, नियमों को स्वीकार करे। अपने जीवन में संयम को महत्व दे। वह संयम को जीवन का भार न माने, श्रृंगार माने, आभार माने। आदमी विचारों में भी संयम रखे। अनावश्यक चिंतन न करे और किसी के बारे में गलत न सोचे, निषेधात्मक विचारों को स्थान न दे। यदि जीवन में संयम का अवतरण हो जाता है तो आदमी शांतिमय जीवन जी सकता

है।

चौथा सूत्र है - समय-नियोजन। आदमी की दिनचर्या ठीक होनी चाहिए। कई बार अव्यवस्थित दिनचर्या के कारण करणीय कार्य छूट जाते हैं और समय बीत जाता है। इसलिए आदमी को योजनाबद्ध कार्य करना चाहिए। हर आदमी को २४ घंटे का समय मिलता है। उसमें से कुछ समय चेतना के लिए भी लगाना चाहिए। आदमी केवल शरीर के आस-पास ही न रहे, आत्मा के आस-पास रहने का भी अभ्यास करे। यदि आदमी का संकल्प हो तो कुछ समय चेतना के लिए निकाला जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि उसको प्राथमिकता दी जाए। जब मैं आचार्य श्री महाप्रज्ञ को देखता था। मैं तो सोचता हूं कि उन्होंने समय का काफी नियोजन कर रखा था। मैं तो सोचता हूं कि आदमी को सोने-जागने का समय निश्चित रखना चाहिए। यदि दोनों न बैठ सकें तो कम-से-कम एक समय तो निश्चित रखना चाहिए। गुरुदेव तुलसी को मैनें देखा, उनके सोने में देरी हो जाती थी, किन्तु उनके जागने का समय निश्चित था। वे प्रातः चार बजे विराजमान हो जाते थे। किस समय कौन-सा कार्य करना चाहिए, यह ध्यान देकर समय-नियोजन करना चाहिए। आदमी अपनी दिनचर्या को व्यवस्थित रखे और कुछ समय अध्यात्म चेतना के लिए भी लगाए तो शांतिमय जीवन जी सकता है। आदमी में ईमानदारी के प्रति निष्ठा जाग जाए, संवेगों पर नियंत्रण करना सीख ले, संयम करना सीख ले तो जीवन शैली विशिष्ट/प्रशस्त बन सकती है और शांतिमय, सुखमय जीवन जी सकता है।

उतार-चढ़ाव

- उतार-चढ़ाव की स्थिति में भी आध्यात्मिक और शारीरिक स्वास्थ्य को सुरक्षित रखा जा सकता है।

-आचार्य तुलसी

नैतिक चेतना

दर्पण में मुख नहीं, विषयों में सुख नहीं

स्वामी गीतानंद भिक्षु

जैसे दर्पण में मुख नहीं होता पर दिखता है वैसे ही विषय भोगों में सुख नहीं होता किन्तु प्रतीत होता है। जैसे दर्पण दृष्टि को वापिस करने का साधन है वैसे ही मन के अनुकूल विषय-भोग चंचल-वृत्ति को रोकने के क्षणिक साधन हैं। जैसे दर्पण से वापिस होकर दृष्टि गर्दन पर मुख को देखती है किन्तु प्रतीत ऐसा होता है जैसे शीशे में मुख दिख रहा है वैसे ही अनुकूल भोगों के द्वारा स्थिर हुई अन्तःकरण की वृत्ति आनन्दानुभूति तो स्वरूप में करती है किन्तु प्रतीत होता है भोगों से सुख मिलता है।

यदि भोग पदार्थों में सुख होता तो उस समय भी भोग पदार्थों में सुख प्रतीत होना चाहिए जिस समय भोग की इच्छा न हो। जैसे प्यास निवृत्त होने पर पानी में, क्षुधा निवृत्त होने पर भोजन में तथा रोग मुक्त होने पर औषधि में सुख की प्रतीति नहीं होती। यद्यपि क्षुधा, तृषा और रोग आदि से निवृत्त होने पर भी सुख की इच्छा तो बनी रहती है किन्तु भोजन, पानी औषधी से उस समय सुख की प्रतीति नहीं होती। अतः सिद्ध हुआ विषय भोगों में सुख नहीं।

सांसारिक भोगों से सुखप्राप्ति की आशा रूपी सड़क पर दौड़ लगाने वाला प्रायः निराशा की मंजिल पर ही पहुंचता है।

महान आश्चर्य : -

भोगने से भोग तथा भोगने में आयु समाप्त होती जा रही है।

तात्पर्य यह कि गत वर्ष के नाना प्रकार के अन्न, फल, साग, दुग्ध, घी, आदि खाद्य पदार्थों को गत वर्ष की

आयु से भोग कर समाप्त कर दिया और गत वर्ष की आयु गत वर्ष के भोगों को भोगने में समाप्त हो गई। तात्पर्य यह कि गत वर्ष के भोगों को गत वर्ष की आयु ने भोग लिया इसलिए गत वर्ष के भोग अब न रहे। गत वर्ष की आयु भोग भोगने में समाप्त हो गई इसलिए गत वर्ष की आयु भी अब न रही। जैसे किसी फल को छीलने खाने में १० मिनट लगे अर्थात् १० मिनट में फल को खाकर समाप्त कर दिया और जिन्दगी के १० मिनट फल को खाने में समाप्त हो गये। सारांश यह कि भोगने से भोग तथा भोगने में आयु समाप्त होती जा रही है। भोग तो वैसे या उनसे भी अच्छे सस्ते या महंगे किसी भी कीमत पर मिल सकते हैं और पुनः भी बाजार में मिल जायेंगे किन्तु जिस आयु से भोगों को भोगा वह आयु फिर कहीं भी किसी भी कीमत पर नहीं मिल सकती।

प्रेक्षा ध्यान द्वारा हृदय रोग निवारण हेतु शोध कार्य में हृदय रोगियों को प्रशिक्षण हेतु आमंत्रण

केन्द्रिय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा शोध संस्थान के अनुदान से अध्यात्म साधना केंद्र में निम्न सप्तदिवसीय प्रेक्षाध्यान प्रशिक्षण शिविरों में सम्मलित होकर हृदय रोग निवारण के शोध कार्य में सहभागी बनें।

प्रत्येक माह की ६ से १५ एवं २४ से ३० तारीख तक

शिविरों में रोगियों की **निःशुल्क जांच की जायेगी। उनके आवास एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था निःशुल्क होगी।** कृपया शिविर में सम्मलित होने के लिए संपर्क करें :-

अध्यात्म साधना केंद्र

छत्तरपुर, नयी दिल्ली-110074

दूरभाष : (011) 26802708, e-mail: sadhanakendra@gmail.com

www.prekshaheart.com

विद्या की महिमा – एक ज्ञानप्रद संकलन

–बाबुलाल शर्मा (सेवानिवृत्त)

१. **इडा सरस्वती मही तिरत्रो देवीर्मयोभुवः।**
बर्हिः सीवन्तु अरित्रहाः।।

(ऋग्वेद १११३१६) इडा = वाणी (भाषा), सरस्वती = विद्या और मही = मातृभूमि (मयोभुवः) कल्याण करने वाली और (अरित्राः) हानि न पहुँचाने वाली (तिरत्र;देवी;) तीन देवियां हमारे (बर्हिःसीदन्तु)अन्तःकरणमेरहें।।

२. **तपो विद्या चविप्रस्य निःश्रेयसकरं परम्।**
तपसा किल्बिषं हन्ति विद्ययामृतमश्नुते।।

(मनुस्मृति १२१२०४) बुद्धिमान ब्राह्मण के लिये तप और सत्यविद्या अर्थात् परा-विद्या परम कल्याण कारक है। तप से वह किल्विष अर्थात् जन्म-जन्मान्तरों के मलीन संस्कारों, वासनाओं, इच्छाओं कामनओं, दोषों, जो अन्तःकरण में आच्छादित संचित चले आ रहे हैं, उनका नाश करता है और ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त करता है। कायिक, मानसिक, वाचिक द्वन्दों, कष्टों को सहन करना तप है- **'तपो द्वन्दो सहनम्'।** तप के बिना अनादि काल के कार्मिकमल, संचित सूक्ष्म शरीर अन्तःकरण में मलीन संस्कार, वासनाओं की शुद्धि नहीं हो सकती।। अतः शुद्धि के लिए तप आवश्यक है। अतः इसलिये योग सूत्र **२१४३१** में ऐसा कहा गया है : **'कायेन्द्रियं सिद्धि शुद्धितयात्तपसः।''** अर्थात् 'तप' का अनुष्ठान करते-करते तपोनिष्ठता प्राप्त हो जाने पर तमोगुण प्रयुक्ल अशुद्धि नामक आवरण रूप मल के क्षय हो जाने पर शरीर तथा इन्द्रियों की सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

३. **विद्यां चाविद्यां च यस्त द्वेदोमय सहा। अविद्यामृत्युं तीर्त्वा विद्ययांमृतमश्नुते** (यजु.४०१६४) जो मनुष्य विद्या= ज्ञान तथा अविद्या = कर्म को साथ-साथ जानता है तथा तदानुसार करता है, वह 'अविद्या' कर्म के द्वारा मृत्यु= किल्विष

को पार करके, विद्या के द्वारा मोक्ष को प्राप्त करता है। बताते चलें विद्या के द्वारा ही 'अमृत तत्त्व आत्म-परमात्मज्ञान' की प्राप्ति होती है और ज्ञान के द्वारा ही संसार के सारे व्यवहार चलते हैं, और पाप, पुण्य, धर्म, अधर्म, कर्तव्य, अकर्तव्य का विवेक होता है और ज्ञान से ही बुद्धि की शुद्धि होती है।

४. श्रुतिक कहती है : **'विद्या ददाति विनयम'** विद्या नम्रता प्रदान करती है और ज्ञान शिक्षा से जो संस्कार प्राप्त होते हैं, उसे नम्रता कहते हैं। विनम्रता से युक्त व्यक्ति का विद्वान होने का लक्षण है। विद्या सीखने के जिज्ञासु में विनम्रता का होना आवश्यक है। नम्रता से ही सब कार्य सफल व सिद्ध होते हैं एवं कठोरपन, अहंभाव और अकड़ से निष्फल हो जाते हैं। इसलिए विद्वान भी ऐसा कहते हैं-

५. **''विद्या विनयेन शोभते''**।। विद्या संस्कार सदा नम्रता से हो शोभित होते हैं। मानव जीवन की सार्थकता तभी सिद्ध होती है, जब व्यक्ति विनम्र होता है। विनम्रता वाणी भाषा, व्यवहार में होनी चाहिये। संस्कारशील व्यक्ति ही सदा सहज विनम्र होता है। अहंकारी अभिमानी व्यक्ति विद्या पढ़ लेने पर भी विनम्र सहज नहीं होता और ईश्वर की समीपता और आध्यात्मिक मार्ग प्राप्त नहीं कर सकता। गीता में भी योगिराज श्री कृष्ण कहते हैं - **विमुढ़ात्माकर्त्ताहं इति मन्यते।** जब-जब व्यक्ति विनम्र होगा और झुककर चलेगा, तब-तब वह ईश्वर की समीपता सामीप्यता को प्राप्त कर लेता है। अतः अहंकार ही मानव के जीवन में प्रगति में बाधक है। विद्या, ज्ञान और सद सुयोग्य सदगुरु की शरण पाकर जो संस्कार प्राप्त होता है उसे ही नम्रता कहते हैं। ऐसे सद् सुयोग्य सदगुरु (शिक्षक) के आश्रय में रहकर विद्या तत्त्व ज्ञान प्राप्त करने वाला विद्या में समृद्धि शील होते हुये भी विद्वान कहलाने के योग्य होता है।

६. श्रुतिक कहती है : **'विद्या धर्मेण शोभते'**।। विद्या धर्म से शोभा देती है। **विद्या विहिनः पशुभिः समान।।''** विद्या, ज्ञान के बिना मनुष्य पशु के समतुल्य बताया गया है।

शेष अगले अंक में

Preksha Meditation

—Swami Dharamananda

Preksha Dhyan is the system of Meditation engaging one's mind fully in the perception of subtle internal and instates phenomena of consciousness.

The aphorism "**Sampikhae Appagamappaenium**" is from Jain Canon Dasvealiyam, forms the basic principle for this system of meditation. Its meaning is "see you yourself ''. Perceive and realize the most subtle of consciousness by your conscious mind. So "to see "is fundamental principle of meditation. So it is a technique basically not concentration of 'thought 'but concentration of 'perception'. To know, to see and to feel are the characteristics of the consciousness. The mind the instrument of "thinking as well as perception". So when it is linked with Preksha Dhyan becomes Concentration of Perception and not of thoughts. The perception is strictly concerned with the phenomena of the present; it is neither memory of the past nor imagination of the future. Whatever is happing at the moment of the perception must necessarily be a reality. In preksha, perception always means experience bereft of the duality of like and dislike. When the perception is contaminated with

pleasure and pain, like and dislike, perception loses its primary position and becomes secondary.

Aim of Preksha Meditation

The main aim of Preksha Meditation to know the self, to experience the soul and to purify the mental state. The ultimate aim of the spiritual practices (Sadhana) is purity and equanimity. The sate of well being is not our aim, it will in eventually ensue, it is not our objective. The main objective can be categorized as follows:

- Purification of consciousness to know the ultimate truth
- Attitudalinal change, behavioral modification and integrated development of personality.
- To live in the moment of divine bliss realizing boundless energy
- To purify negative emotions and attain peace
- Reduced physical stress and strengthen the immune system.
- To improve physical, mental and emotional health
- Transforming and transmuting the nature and behavior towards non-violent way of living.

Basis of Preksha Meditation

The spiritual view of living organism is an organic unity of two elements a nonmaterial consciousness element called 'psyche' or soul, and a material element called body. The materialists have the opinion about organism is that it consist of gross body, Organs and brain. The spiritualists view extends further and add a subtle body the Taijase Sarira, a more subtle body Karma Sarira, conscious mind (chitta) and finally the psyche or soul itself. So the soul is surrounded by the subtle Sariras.

Meta physical Basis

- There is bondage.
- There are causes of bondage.
- There is freedom of bondage.
- There are ways of attaining freedom from bondage.

Scientific Basis

- Neuro-endocrine system regulates and governs human's actions.
- Emotions and Harmones responsible for good and bad activities.
- Subconscious mind controls human behavior.
- Innate mechanism describes human personalities.

चिकित्सा

"अलसी" एक औषधी भी है

डॉ. गोस्वामी

अलसी एक बहुत लाभदायक औषधी है इस औषधी के बारे में बहुत कम लोग जानते हैं। इसे आयुर्वेद में एक विशेष भोजन माना है। तथा इस औषधी के निम्न लाभ है-

१. आयवर्द्धक है। मस्तिष्क, आंखे, स्नायुतंत्र के लिए राम बाण ईलाज है।

२. रक्तचाप, मधुमेह, जोड़ो के दर्द में, मोटापा, कैंसर आदि रोगों को रोकने की शक्ति है।

३. हृदय रोग जैसे रोगों में लाभदायक है।

४. यदि मां के स्तन से दूध नहीं आ रहा है तो २४ घंटे में इसके सेवन से दूध आऐगा।

५. कब्ज, बवासीर, भगन्दर, जैसे रोगों में सहायक है।

६. अलसी पित्त की थैली में पथरी का नाश करती है।

७. त्वचा की झुर्रियां दूर करती है।

८. गठिया, गाउट, मोच को ठीक करती है।

९. जिगर, गुर्दे, आर्थराईटिस, थॉइराइड को ठीक करती है।

१०. अस्थमा, माईग्रेन जैसे रोगो में सहायक है।

सेवन विधि :

(क) मिक्सी में पीसकर आटे में मिला कर ले, रोटी, पराठा बना कर सेवन करें।

(ख) लडडू, आदि भी बना सकते हैं।

(ग) अंकुरित अलसी का स्वाद भी कुछ अनोखा है।

(घ) सब्जी, दाल, सलाद में भी डाल सकते हैं।

(ड़) ३० व ३६ ग्राम प्रतिदिन सेवन कर सकते हैं।

शंका एवं समाधान

(समाधान गुरुदेव आचार्य तुलसी द्वारा)

प्रश्न : अणुव्रत साधना के क्रम में आपने प्रार्थना या ध्यान करने बात कही है। यहां प्रार्थना से आपका क्या अभिप्राय है? क्या इससे हीन भावना को प्रोत्साहन नहीं मिलता?

उत्तर : सामान्यतः प्रार्थना शब्द से याचना का बोध होता है। किन्तु जहां परमात्मा या विशिष्ट सत्ता के प्रति प्रार्थना का प्रसंग हो वहां उसका अर्थ है आदर्श को सामने प्रस्तुत करना। जिन विशिष्ट योग्यताओं और क्षमताओं को प्राप्त करना है उनकी किसी प्रतीक के माध्यम से स्मृति होती है। पुनः-पुनः स्मरण गुण-संक्रमण का मुख्य हेतु है। उसका ध्यान बार-बार उसी दिशा में एकाग्र होता है। एकाग्रता का अर्थ है उस प्रधान आलम्बन पर मन को स्थापित करना। मन की चंचलता आंशिक या पूर्ण उपलब्धि में सहायक सिद्ध होती है। इसीलिए कहा जाता है-

योगि-देहे तथाध्यानात् जायते गुणसंक्रमः।

योग-विद्या में शक्ति-संप्रेषण और शक्तिपात की जो व्यवस्था है, वह और क्या है? साधक जिस क्षण अपने आराध्य के प्रति सर्वात्मना लीन हो जाता है, आराध्य की समताओं में आकण्ठ निमग्न हो जाता है, उसमें वैसी ही स्थिति पैदा हो जाती है। व्यक्ति की अपनी योग्यता या साधना के बिना शक्तिपात का सिद्धान्त भी घटित नहीं हो सकता।

प्रार्थना का अर्थ है भगवान का उत्कर्ष! भावों का उत्कर्ष तदनुरूप परिणति कर देता है। स्थूल रूप से देखनेवाला सोचता है- मांगने से मिल गया। किन्तु मांगने से ही मिले तो हर व्यक्ति मनोनुकूल वातावरण निर्मित कर सकता है।

अगस्त माह का प्रेक्षाध्यान, हृदय रोग, मधुमेह एवं रक्तचाप निवारण शिविर संपन्न

'अध्यात्म साधना केंद्र' में अगस्त माह में प्रेक्षाध्यान, हृदय रोग, मधुमेह एवं उच्च रक्तचाप निवारण के दो शिविर दिनांक 9–8–2011 से 15–8–2011 तथा 24–8–2011 से 30–8–2011 तक संपन्न हुआ।

सदा की भांति इस बार भी शिविर के समस्त कार्यक्रम स्वामी धर्मानंद जी के कुशल मार्गदर्शन में संपन्न हुआ। उन्होंने संभागियों को बताया कि बीमारी के मूल में मन की चंचलता है। उन्होंने मन एवं चित्त की परिभाषा करते हुए बताया कि मन का कार्य है– स्मृति, कल्पना एवं चिंतन तथा चित्त का कार्य है– स्मृति, कल्पना एवं चिंतन तथा चित्त का कार्य है – देखना, जानना, अनुभव करना। प्रेक्षाध्यान चंचल मन से अमन होकर चित्त से जुड़ने की एक प्राचीन एवं वैज्ञानिक विधि है जिसके द्वारा हमें शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक स्वास्थ्य प्राप्त होता है।

संस्था के डॉ. सुनील कुमार सिंह ने शिविरार्थियों को बताया कि हृदय रोग का मूल कारण मानसिक तनाव, डिब्बाबंद भोजन, शारीरिक श्रम का अभाव एवं नशीली वस्तुओं का सेवन है। उन्होंने हृदय रोगियों के परीक्षण के साथ-साथ उचित परामर्श भी दिया तथा प्रेक्षाध्यान विधि को समग्र रूप से जीवन में उतारने के लिये प्रोत्साहित किया। यह विधि हृदय रोग निवारण में बहुत कारगर सिद्ध हुई है।

शिविरार्थियों को ध्यान, कायोत्सर्ग, आसन-प्राणायाम, अनित्य अनुप्रेक्षा, एकत्व अनुप्रेक्षा, भाव-शुद्धि की अनुप्रेक्षा का अभ्यास कराया गया। शिविरार्थियों ने केंद्र के दिव्य एवं प्राकृतिक वातावरण, स्वच्छता, प्रशिक्षण के तरीके, भोजन की व्यवस्था तथा कर्मचारियों के व्यवहार की मुक्त कंठ से प्रशंसा कि तथा इस कार्यक्रम को दूर-दूर तक फैलाने का आश्वासन भी दिया।

सितम्बर 2011 एवं अक्टूबर 2011 में आयोजित होने वाले शिविरों की तालिका निम्न है :

सितम्बर 2011

01-07 प्रेक्षा ध्यान, श्वास एवं मानसिक समस्याओं का निवारण शिविर
09-15 प्रेक्षा ध्यान, हृदय रोग, मधुमेह, उच्च रक्तचाप निवारण शिविर
16-22 प्रेक्षा ध्यान शिविर
24-30 प्रेक्षा ध्यान, हृदय रोग, मधुमेह, उच्च रक्तचाप निवारण शिविर

अक्टूबर 2011

01-07 प्रेक्षा ध्यान, श्वास एवं मानसिक समस्याओं का निवारण शिविर
09-15 प्रेक्षा ध्यान, हृदय रोग, मधुमेह, उच्च रक्तचाप निवारण शिविर
16-22 प्रेक्षा ध्यान शिविर
24-30 प्रेक्षा ध्यान, हृदय रोग, मधुमेह, उच्च रक्तचाप निवारण शिविर

दैनिक निःशुल्क साधना कार्यक्रम

1. प्रेक्षाध्यान –

प्रथम सत्र प्रातः : 05:15–06:15 बजे तक
द्वितीय सत्र प्रातः : 10:30–11:00 बजे तक
तृतीय सत्र रात्रि : 08:15–09:30 बजे तक

२. स्वास्थ्यवर्द्धक क्रियाएं –

आसन-प्राणायाम प्रातः : 06:15–07:15 एवं 7:15 से 8:15

३. कायोत्सर्ग मध्याह्न : 11:15–12:00 बजे

दृढ़ निश्चय के साथ आगे बढ़ने की क्षमता आप में है तो कोई शक्ति नहीं, जो नैतिक-पथ पर बढ़ते आपके कदमों में अवरोध पैदा कर सके।

–आचार्य तुलसी

आचार्यश्री महाश्रमणजी के प्रवचन 'संस्कार' चैनल पर प्रतिदिन प्रातः ८:१५ बजे से सुन सकते हैं।

–संपादक